विकास की नूतन अवधारणा-2

डॉ. समणी हिमप्रज्ञा एवं समणी चैतन्यप्रज्ञा

प्रामाणिकता एवं नैतिकता

नैतिकता की आधारशिला है-करुणा का विकास। जिसमें करुणा और संवेदनशीलता है वह क्रूरतापूर्ण आचरण नहीं करता है। क्रूर आदमी ही अनैतिक आचरण कर सकता है। जिसके मन में करुणा और संवेदनशीलता है, वह किसी भी हालत में दूसरे को कभी दुःखी नहीं बना सकता। वह अनैतिक आचरण नहीं कर सकता। अनैतिकता को मिटाने के लिए अध्यात्म की चेतना को जागृत करना आवश्यक है।[१] नैतिकता और अनैतिकता का सत्तर प्रतिशत संबंध अर्थ के साथ जुड़ा हुआ है। अर्थ के प्रति दृष्टिकोण बदलने से ही अनैतिकता पर ब्रेक लग सकता है। अर्थ के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदलता है तब तक अनैतिकता एवं हिंसा को समाप्त करना संभव नहीं। अर्थ का एक पक्ष है जो चाहते हैं वह मिल जाता है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि जितनी बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं, वे सब अर्थ की ही देन हैं। अर्थ का प्रश्न नहीं होता तो घोटाला, चोरी, डकैती आदि समस्याएं उत्पन्न नहीं होती। अर्थ से उत्पन्न होने वाली समस्या का समाधान चेतना के विकास से ही हो सकता है।

नैतिकता का पहला आधार है-अस्वीकार की शक्ति का विकास। प्रत्येक बात को स्वीकार न करे। अस्वीकार की शक्ति से व्यक्ति अनेक प्रकार की बुराइयों से बच सकता है। वर्तमान समाज व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था गरीब को और ज्यादा गरीब तथा अमीर को और ज्यादा अमीर बनाने वाली है। ऐसी व्यवस्था हो जो अन्यायपूर्ण न हो, न्यायपूर्ण हो तथा सबको रोजी-रोटी प्राप्त कराने वाली हो। आचार्य महाप्रज्ञ का अभिमत है कि दोषपूर्ण अर्थ व्यवस्था और समाज व्यवस्था को बदलने से ही भ्रष्टाचार को मिटाया जा सकता है। समस्या के समाधान के लिए मूल कारणों पर विचार करना आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है-आध्यात्मिक चेतना का जागरण। आध्यात्मिक चेतना के बिना नैतिकता या प्रामाणिकता संभव नहीं है। आध्यात्मिक चेतना से तात्पर्य है-संयम, नियन्त्रण, अस्वीकार की शक्ति।

प्राचीन समाज की एक मान्यता थी-रहे साख जाए लाख। इस मान्यता के कारण प्रत्येक व्यक्ति को हर परिस्थिति में प्रामाणिक रहना आवश्यक था। इस मान्यता ने सच्चे और प्रामाणिक लोगों की सृष्टि की। वर्तमान समय में समाज की मान्यता में परिवर्तन हुआ है। आज के व्यक्ति की विचार धारा है-प्रामाणिकता खण्डित भले हो, किन्तु सुख-सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए। इस विचार धारा ने सत्य और प्रामाणिकता का मूल्य कम कर दिया और सुख-सुविधा में अकल्पित वृद्धि कर दी है। आज प्रत्येक व्यक्ति इस भाषा में सोचता है-मैंने रिश्वत नहीं ली, मैंने मिलावट नहीं की, मैंने अप्रामाणिकता नहीं की अतः मेरा विकास नहीं हुआ और जिसने ऐसा किया वह कितना आगे बढ़ गया। उसके पास सब सुख-सुविधा के साधन हैं।

अप्रामाणिकता से वही बच सकता है जो आय के स्रोतों पर नियन्त्रण करने के साथ-साथ व्यय पर भी नियन्त्रण करता है। इस पर नियन्त्रण होने से ही आडम्बर, दिखावा, स्पर्धा, फिजूलखर्च स्वतः ही छूट जाता है।

अर्थार्जन की पद्धति जहां नैतिकता से पूरित होती है, वहां शोषण और अनावश्यक संग्रह नहीं होता और जब वह स्वार्थपूरित होती है तब श्रम का शोषण होता है। अर्थार्जन की पद्धति को नैतिक बनाने के लिए आवश्यक है-प्रामाणिकता और साधन-शुद्धि का विचार। इनके विचार और पालन से ही मानवोचित गुणों का विकास संभव है। ऐसा होने पर ही संग्रह, शोषण तथा अनैतिकता आदि बुराईयां स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

एक है नैतिकता की दिशा जिसका आधार है-संयम और दूसरी है अनैतिकता की दिशा जिसका आधार है-भोग। आकर्षण भोग की ओर है तो व्यक्ति कहने से या उपदेश से त्याग नहीं करता। उसमें त्याग की चेतना जागृत करनी पड़ती है और यह अभ्यास से ही संभव है।[१]

वर्तमान समय में अर्थशास्त्र की जो नई नीतियां बनी हैं, उनमें यह स्पष्ट है कि प्रामाणिकता और नैतिकता के बिना कोई भी व्यक्ति लंबे समय तक धन का अर्जन नहीं कर सकता। व्यापार के क्षेत्र में विश्वास और साख का बड़ा महत्त्व है। इसी विश्वास और साख के आधार पर करोड़ों-अरबों का कारोबार चलता है।

व्यापार में दो नीतियां चलती हैं-दीर्घकालीन नीति और अल्पकालीन नीति। दीर्घकालीन नीति से वही व्यक्ति सफल होता है जो प्रामाणिक है। आज आदमी में भी असली और नकली की पहचान यह रह गई है कि जिसका नैतिकता, प्रामाणिकता में विश्वास है और जो वैसा आचरण करता है, उसे असली माना जाए। जो इन गुणों से शून्य हो, उसे नकली और अप्रामाणिक माना जाए। आज जरूरत है नये आदमी की। प्रामाणिक आदमी की।

साधन-शुद्धि

भारतीय चिन्तन और विशेषकर जैन चिन्तन में सबसे अधिक बल साधन-शुद्धि पर दिया गया है। साधन यदि शुद्ध नहीं है तो साध्य भी दूषित हो जाता है। जैन धर्म के इतिहास में महावीर के पश्चात् आचार्य भिक्षु, जो तेरापंथ के प्रवर्तक हैं, ने साधनशुद्धि के विषय में विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने कहा-जहां साधन-शुद्धि नहीं है, वहां उच्च साध्य को कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। आचार्य भिक्षु के पश्चात् महात्मा गांधी ने साधन-शुद्धि पर बहुत बल दिया। किंतु मार्क्स और केनिज ने साधन-शुद्धि के विचार को गौण माना। उनकी दृष्टि में अर्थ का विकास ही प्रमुख रहा। उस चिन्तन ने अर्थार्जन में मानवीयता और नैतिकता के विचार को गौण और येन केन प्रकारेण अर्थार्जन को मुख्य बना दिया है। आवश्यकता है इस अर्थशास्त्रीय अवधारणा को बदलने की और मानवोचित गुणों के विकास की।

मानवीय एकता में विश्वास नहीं होने के कारण मनुष्य के भावों और विचारों में सकारात्मक परिवर्तन नहीं आ रहा है। उसमें संवेदनशीलता और करुणा का स्रोत सूखता जा रहा है। करुणा के अभाव में नैतिकता और साधन-शुद्धि की बात सोचना भी संभव नहीं है। इस संदर्भ में आचार्य तुलसी ने कहा-क्रूरता अनैतिकता और करुणा नैतिकता है। नैतिकता और साधन-शुद्धि के अभाव में विकास की जो अवधारणा बनाई गई वह असंतुलित है। जब तक संतुलित विकास नहीं होता, समस्या का समाधान नहीं होता है।

संतुलित विकास के लिए आवश्यक है चतुष्कोण का निर्माण

जैसा कि स्पष्ट है कि वर्तमान युग की अनेक समस्याओं का कारण विकास की अवधारणा का असंतुलन है। विकास की अवधारणा को संतुलित करने के लिए चतुष्कोण का निर्माण आवश्यक है। वे चार कोण हैं-

1. भौतिक विकास (Physical development)
2. आर्थिक विकास (Economical development)
3. नैतिक विकास (Moral development)
4. आध्यात्मिक विकास (Spicitional development)

भौतिक और आर्थिक विकास ऐसा न हो जो नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को बाधा पहुंचाए। निःसंदेह मनुष्य की जीवनशैली पर सर्वाधिक प्रभाव अर्थ का

होता है। वर्तमान समय में अर्थ केन्द्र में है और सारे मानवीय मूल्य उसकी परिधि में है। आज मनुष्य में जैसा बदलाव आया है, उसे देखकर बड़े-बड़े अर्थशास्त्री भी विस्मित हैं। अर्थ आवश्यक है यह युगीन और सार्वभौम सच्चाई है, किन्तु उसके साथ अन्य कोणों का विकास भी आवश्यक हैं।[१]

आज नैतिकता और साधन शुद्धि जैसी बात आर्थिक अवधारणा के चैप्टर से निकाल दी गई है और 'Money is everything' की धारणा प्रतिष्ठित हो गई है। जिस देश में चालीस करोड़ आदमी स्वर्गीय वैभव का अनुभव कर रहे हों, साठ करोड़ लोग जीवन के मूलभूत साधनों की आशा लिए बैठे हों, उन्हें पेटभर भोजन भी सुलभ नहीं हो पा रहा हो, उस देश को विकासशील देश नहीं कहा जा सकता। देश और दुनिया के नंबर वन धनपतियों की सूची प्रकाशित होती है। यह सूची क्यों नहीं प्रकाशित होती कि इस धरती पर भूखे सोने वालों की संख्या कितनी है?धनपति अपने उपभोग की सीमा नहीं कर रहे हैं। उनका उपभोग असीमित है। ऐसा कर वे गरीब लोगों के सामने समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। लोगों के मन में प्रतिक्रियात्मक हिंसा (Reactive Violence) उत्पन्न कर रहे हैं। जो नेतृत्व कर रहे हैं उनको इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। महात्मा चाणक्य ने कहा शासक को इन्द्रियजयी होना चाहिए। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का भी मन्तव्य है कि धनपति को इन्द्रियजयी होना आवश्यक है, किन्तु वैसा नहीं होने से विलासिता ज्यादा बढ़ रही है। उपभोग की लालसा पर नियन्त्रण आवश्यक है। इस हेतु आचार्यश्री तुलसी ने महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया-अर्जन के साथ विसर्जन। अर्जन और विसर्जन का सूत्र आज की अर्थव्यवस्था को नया मोड़ दे सकता है।

जिस देश की अर्थ-व्यवस्था इतनी असंतुलित हो कि करोड़ों लोगों को दो समय की रोटी न मिल रही हो और लाखों लोगों को अपच हो रहा हो, वह देश अहिंसक देश कभी बन नहीं सकता। वहां तो नक्सली और विद्रोही पैदा होते हैं। होलेण्ड की धरती पर जीने वाला कोई भी आदमी रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था से वंचित नहीं होता। वहां की सरकार इस काम को अपना अनिवार्य कर्तव्य मानती है। हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं है। यहां की एक बहुत बड़ी आबादी जीवन की इन मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। खाने को रोटी नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं और सिर छिपाने को ऊपर छत नहीं। लाखों लोग खुले आसमान के नीचे अपने दिन काटते हैं। एक वाक्य में कहें तो वे जीवन नहीं जी रहे हैं, जीवन का अभिशाप भोग रहे हैं। संतुलित विकास के लिए आवश्यक है आर्थिक विकास के साथ-साथ अहिंसक चेतना का विकास।

अहिंसा के तीन उपस्तंभ है- अर्थ व्यवस्था, समाज व्यवस्था और राज्य व्यवस्था। सबसे ज्यादा मजबूत उपस्तंभ है-अर्थ व्यवस्था। इसके साथ दो खंभे और हैं-समाज व्यवस्था और राज्य व्यवस्था। आचार्य महाप्रज्ञ का अभिमत है कि व्यक्ति नब्बे प्रतिशत अर्थ से प्रभावित है। मात्र दस प्रतिशत धर्म और दूसरी चीजों से प्रभावित है। कारण स्पष्ट है प्रत्यक्ष फल जिससे मिलता है आदमी उसी से प्रभावित होता है। जीवन-यापन के लिए जो भी आवश्यकता है उसकी पूर्ति धर्म से या अन्य वस्तु से नहीं होती है, किन्तु अर्थ से होती है। अर्थ के बिना एक दिन भी व्यक्ति की गाड़ी नहीं चलती। पास में पैसा है तो व्यक्ति बाजार से मनपसंद वस्तु खरीद सकता है। यही कारण है कि व्यक्ति का धन के प्रति आकर्षण अधिक है, लेकिन धर्माचार्यों, नीतिकारों और विचारकों ने अहिंसा को भी बहुत महत्त्व दिया, उसे आवश्यक माना है, किन्तु उसके साथ अर्थ व्यवस्था पर ध्यान कम दिया। धर्म के लोगों ने तो अर्थ को अनर्थ भी कहा है। आज इस पर पुनर्विचार की जरूरत है। अर्थ को अनर्थ मानने से काम नहीं हो सकता। अर्थ का अर्जन कैसे हो?उसका उपभोग कैसे हो?अर्थ के प्रति दृष्टिकोण कैसा हो?इन पर चिंतन अपेक्षित है।

जब तक धर्म के द्वारा व्यक्ति को संवेग नियंत्रण (Control of Negative Emotions) की शिक्षा नहीं मिलती है तब तक अच्छी बात भी बहुत दिन तक कायम नहीं रह सकती। आचार्य महाप्रज्ञजी के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति और स्वस्थ समाज व्यवस्था होने से ही स्वस्थ अर्थ व्यवस्था संभव है। व्यक्ति के भीतर धर्म और नैतिकता का विकास तभी होता है जब उसका संवेग पर नियंत्रण हो। जब तक संवेगों पर नियन्त्रण नहीं होता है तब तक अहिंसा की चेतना का विकास नहीं होता है।

केनिज ने अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य बतलाया-हर निर्धन व्यक्ति धनी बने, मालामाल बन जाए। उद्देश्य आकर्षक है। इस विषय में साम्यवाद और पूंजीवाद में विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। प्रक्रिया और परिणाम में अन्तर हो सकता है, किन्तु मूल उद्देश्य यही है कि कोई भी व्यक्ति निर्धन न रहे, गरीब न रहे, गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन न करे। प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा सभी सुख और शान्ति के साथ जीवन यापन करे। यह विकास का एक लक्ष्य निर्धारित किया गया। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से विकास की यह परिभाषा सही भी है। आर्थिक विकास, प्रौद्योगिकी का विकास, टेक्नोलॉजी का विकास, प्रति व्यक्ति आय और जीवन स्तर-ये अर्थशास्त्र के विकास के मानदण्ड हैं।

इन मानदण्डों को पूरा करने का साधन प्रत्येक व्यक्ति में अधिक से अधिक स्वार्थ वृत्ति को बढ़ावा देना है। आज के अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय ही बन चुका है। जहां तक हो सके, स्वार्थवृत्ति को उभारा जाए। जितना स्वार्थ उतना ही विकास। केनिज ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

इस संदर्भ में महावीर के दर्शन पर चिंतन करना आवश्यक है। प्रिय और हित इन दो शब्दों पर ध्यान देना आवश्यक है। हर व्यक्ति धनवान बने, स्वार्थवृत्ति को बढ़ावा दे, जिससे संपदा का विकास हो-ये सिद्धान्त प्रिय हैं, किन्तु हितकर नहीं हैं। वैयक्तिक स्वार्थ ने समाज में काफी समस्याएं उत्पन्न की है। साधनशुद्धि पर विचार किये बिना इच्छित साध्य को नहीं पाया जा सकता है। आवश्यकता है आज अहिंसक आर्थिक विकास की। कैसे हो अहिंसक एवं संतुलित आर्थिक विकास?इसकी प्रक्रिया क्या हो?इस संदर्भ में भगवान महावीर ने विकास की निम्नांकित प्रक्रिया प्रस्तुत की-

1. अहिंसा और साधन-शुद्धि
2. मूल्यों का विकास
3. स्वार्थ की सीमा हो

1. अहिंसा और साधन-षुद्धि

विकास के लिए साधनशुद्धि का होना आवश्यक है। आर्थिक विकास हो, किन्तु उसमें हिंसा, अपहरण, अनैतिकता, बेईमानी जैसे तत्त्व हों तो उस पर पुनः चिंतन करने की जरूरत है। हिंसक साधनों से व्यक्ति मालामाल हो सकता है, किन्तु उसके लिए जो साधन अपनाए जाते हैं वे गलत होने से समाज में और परिवार में अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। स्थाई विकास अहिंसा और साधनशुद्धि से ही संभव है। साधनशुद्धि का विचार न होना आधुनिक अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी समस्या है। इसके बिना अहिंसा और शांति की बात सोच नहीं सकते। महावीर ने उत्पादन में साधन शुद्धि के लिए निम्नांकित सूत्र दिए-

❖ वध न करना
❖ छविच्छेद करना
❖ अतिभार न लादना
❖ भक्तपान का विच्छेद न करना

भगवान् महावीर ने कहा उत्पादन की सीमा करो। हर चीज का उत्पादन न हो। मादक वस्तुओं का उत्पादन न हो और न ही उसका सेवन। पान मसाले का ही करोड़ों का कारोबार हो रहा है। जो जीवन की प्राथमिक [illegible] उनका उत्पादन या तो विलासिता की ओर ले जाता है या मादकता की ओर। जो पाप कर्म का कारण है वैसा उद्योग भी न करने का निर्दे[illegible] उद्योग थे, उनका वर्गीकरण हुआ। उन्हें व्रत की आचा[illegible]

गया। व्रती समाज के सदस्य के लिए पन्द्रह कर्मादान का निषेध किया गया, उनके सीमाकरण की बात कही। उस समय एक उद्योग था-इंगाल कम्मे का उद्योग। एक था-वणकम्मे-ईंधन का उद्योग। एक उद्योग था जंगल को जलाना। एक उद्योग खेती की भूमि बढ़ाने के लिए तालाब आदि को सुखाना। महावीर ने कहा इनकी भी सीमा करो।[१]

इनके अलावा महावीर ने व्यवसाय में साधन-शुद्धि के निम्नोक्त सूत्र भी दिए-

- ❖ कूटतोल-माप मत करो।
- ❖ वस्तु दिखाओ कुछ और दो कुछ, यह मत करो।
- ❖ किसी की धरोहर का गबन मत करो।

समाज के संदर्भ में परिणाम के नियन्त्रक तत्त्व दो हैं-प्रामाणिकता और करुणा। झूठा तोलमाप आदि नहीं करने के पीछे प्रामाणिकता और करुणा की प्रेरणा काम करती है। व्यक्तिगत उपभोग कम करने के पीछे संयम की प्रेरणा कार्य करती है। महावीर के व्रती श्रावक अर्थार्जन में अप्रामाणिक साधनों का प्रयोग नहीं करते थे और व्यक्तिगत भोग की भी सीमा रखते थे।

2. मूल्यों का विकास

भगवान् महावीर ने कहा अर्थार्जन में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा न हो। वर्तमान समय में स्थिति दूसरी हो गई है। केनिज ने कहा-अभी यह समय नहीं आया है कि हम मूल्यों पर विचार करें या नैतिकता पर। जब सभी धनवान बन जाएंगे तब इस पर विचार करने की जरूरत पड़ेगी। महावीर की अर्थशास्त्रीय अवधारणा में आर्थिक विकास के साथ करुणा का विकास, संवेदनशीलता का विकास होना आवश्यक है। समृद्ध बनने के लिए एक व्यक्ति ने क्रूरता के साथ धन बटोरा। आर्थिक विकास तो हुआ, किन्तु उसका यह विकास हजारों व्यक्तियों के लिए अभिशाप बन गया।

3. स्वार्थ की सीमा

व्यक्ति अकेला नहीं है, दुनिया बहुत बड़ी है। अरबों आदमी हैं। एक व्यक्ति अपने स्वार्थ को इतना उभारे कि स्वयं आर्थिक विकास करे। किंतु दूसरों को हानि पहुंचाकर यह नहीं होना चाहिए।

विश्व की और विशेषकर हिन्दुस्तान की सबसे अनिवार्य आवश्यकता है-शिक्षा। शिक्षा और सुरक्षा पर हो रहे खर्च की तुलना करें तो बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता है। शिक्षा पर मुश्किल से दो-तीन प्रतिशत व्यय होता है। विश्व के संदर्भ में देखें तो आधी से ज्यादा पूंजी सुरक्षा पर खर्च हो रही है। यह पूंजी गरीबी के उत्थान और शांति की स्थापना में लगे तो समाधान प्राप्त हो सकता है।[१]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थाई विकास के लिए आवश्यक है वर्तमान की एकांगी विकास की अवधारणा के स्थान पर संतुलित विकास की अवधारणा को प्रतिष्ठित करने की। यह तब संभव है जब वर्तमान की येन केन प्रकारेण अर्थ प्राप्ति की मानसिकता में बदलाव आए और व्यक्ति में स्वार्थ के साथ-साथ परार्थ चेतना का भी विकास हो। परार्थ चेतना के विकास के लिए आवश्यक है-अहिंसा, करुणा, संवेदनशीलता, नैतिकता और साधन-शुद्धि जैसे मूल्यों का विकास। मूल्यों के विकास के लिए आवश्यक है-मस्तिष्कीय प्रशिक्षण की व्यवस्था। ❐

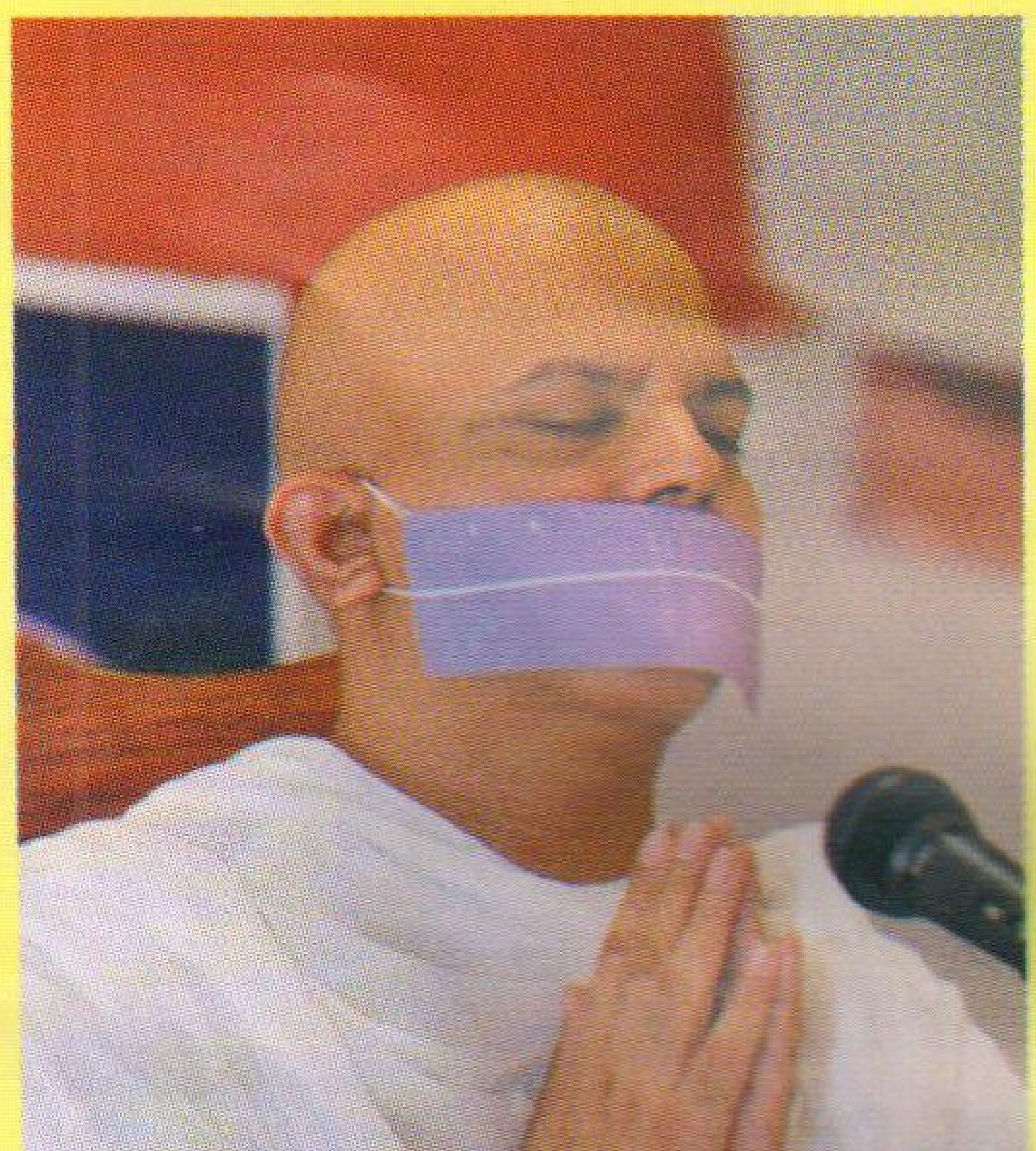

धार्मिक व सेवा कार्य

आदमी को जब तक बुढ़ापा पीड़ित न करने लगे, व्याधि न सताने लगे तथा इन्द्रियां क्षीण न हो जाए आदमी को धर्म का समाचरण कर लेने का प्रयास करना चाहिए। बुढापा तो फिर भी एक अवस्था के बाद आए किन्तु बीमारी का तो कोई पता नहीं होता है कि वह शरीर को कब लग जाए। इसलिए आदमी को अपने कुछ समय का नियोजन धर्म के कार्यों में करने का प्रयास करना चाहिए। इन्द्रियों का क्षीण होना आदमी को अक्षमता की ओर ले जाने वाला होता है। शरीर सक्षम रहे तो कोई भी कार्य अथवा धार्मिक कार्य किया जा सकता है। सेवा का कार्य भी सक्षम शरीर से ही किया जा सकता है। कानों से कम सुनाई देना, आंखों से कम दिखाई देना, बालों का सफेद हो जाना, घुटनों आदि जोड़ों में दर्द आदि शरीर के अक्षमता के लक्षण हैं। आदमी के शरीर को बीमारी लग जाए तो भी कार्य करने की सक्षमता में बाधा आती है। स्वस्थ शरीर से धर्म का समाचरण हो सकता है। इसलिए आदमी को शरीर स्वस्थ रहने के दौरान ही धर्म का समाचरण करने का प्रयास करना चाहिए। आदमी को स्वस्थ रहते हुए धार्मिक कार्य करने का प्रयास करना चाहिए। सेवा का कार्य भी यथासंभव करने का प्रयास करना चाहिए। **– आचार्य महाश्रमण**

श्रद्धा का मतलब यही नहीं है कि तुम गलत बात को पकड़ने के बाद उसे छोड़ो ही नहीं।
श्रद्धा यह रख लो कि मैं गलत लगने वाली बात को छोड़ भी सकता हूं।
– आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावनत
अमरचंद धरमचंद लुंकड़
राणावास-चेन्नई